Shodhpith
International Multidisciplinary Research Journal
(International Open Access, Peer-reviewed & Refereed Journal)
(Multidisciplinary, Bimonthly, Multilanguage)
Volume: 1 Issue: 3 May-June 2025

अम्बेडकर के विचारों में जाति प्रथा और दलित समस्याओं का समाधान

डॉ0 संदीप कुमार
पी. एचडी., इतिहास विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

सारांश

भारतीय सामाजिक संरचना में जाति प्रथा एक गहरे और स्थायी विभाजन का कारण रही है, जिसने दलितों को शोषण, अपमान और सामाजिक बहिष्कार का शिकार बनाया। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था के विरुद्ध एक समग्र वैचारिक और संवैधानिक संघर्ष प्रारंभ किया। उनका उद्देश्य न केवल जाति प्रथा को खत्म करना था, बल्कि दलित समुदाय को सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से सशक्त बनाना भी था। डॉ. अंबेडकर का मानना था कि जाति व्यवस्था मानव समाज में असमानता, वैमनस्य और सामाजिक विघटन का मूल कारण है। उन्होंने जाति को केवल एक सामाजिक संरचना न मानकर एक गहरी मानसिकता और धार्मिक विचारधारा के रूप में देखा। अपने प्रसिद्ध निबंध 'जाति का उन्मूलन' में उन्होंने वेदों, मनुस्मृति और पुरोहितवादी परंपराओं की आलोचना करते हुए कहा कि जाति व्यवस्था धर्म आधारित दमन का रूप है, जिसे समाप्त किए बिना सामाजिक समानता संभव नहीं। अंबेडकर ने दलितों को जागरूक करने हेतु शिक्षा को सबसे प्रभावशाली साधन माना। उनका नारा 'शिक्षित बनो, संगठित बनो और संघर्ष करो' आज भी दलित आंदोलन की प्रेरणा है। उन्हा. ने भारतीय संविधान निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाई, जिसमें समानता का अधिकार, अस्पृश्यता का उन्मूलन, आरक्षण की व्यवस्था, और सामाजिक न्याय की अवधारणा को प्रमुख स्थान दिया गया। डॉ. अंबेडकर ने अनुभव किया कि हिंदू धर्म के भीतर रहकर जाति प्रथा का उन्मूलन असंभव है। अतः उन्होंने 1956 में अपने अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म स्वीकार किया, जिसे उन्होंने समानता और मानवता का धर्म बताया। उनका यह कदम दलितों के आत्म–सम्मान और पहचान के संघर्ष में मील का पत्थर साबित हुआ। आज अंबेडकर के विचार न केवल दलितों के लिए, बल्कि समूचे भारतीय समाज के लिए एक आदर्श सामाजिक समरसता, न्याय और लोकतांत्रिक मूल्यों का मार्गदर्शन प्रस्तुत करते हैं। जातिवाद आज भी अनेक रूपों में विद्यमान है, ऐसे में अंबेडकर की विचारधारा की समकालीन प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है। उनके द्वारा सुझाए गए समाधान आज भी सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए प्रेरक हैं।

मुख्य–शब्द– डॉ. भीमराव अंबेडकर, जाति प्रथा, दलित, सामाजिक न्याय, संविधान, शिक्षा, धर्मांतरण, आरक्षण, सामाजिक सुधार

प्रस्तावना

भारत का सामाजिक ढांचा सैकड़ों वर्षों से जाति व्यवस्था पर आधारित रहा है, जिसने समाज को श्रेणियों

में विभाजित कर सामाजिक समरसता को बाधित किया। इस व्यवस्था के अंतर्गत तथाकथित श्नीचीश जातियों, विशेषतः अनुसूचित जातियों को निरंतर सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर पर शोषण का सामना करना पड़ा। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने न केवल इस व्यवस्था की सैद्धांतिक और व्यावहारिक आलोचना की, बल्कि इससे उत्पन्न दलित समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत किया। उनके विचार और प्रयास भारतीय समाज को समतामूलक बनाने के लिए एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। शोध विषय की पृष्ठभूमि इसी ऐतिहासिक अन्याय के विरुद्ध डॉ. अंबेडकर के संघर्ष पर आधारित है। जाति व्यवस्था की जड़ें भारत की प्राचीन सामाजिक और धार्मिक संरचनाओं में निहित हैं, जो व्यक्ति की जन्माधारित स्थिति को ही उसकी सामाजिक भूमिका, अधिकार और प्रतिष्ठा का निर्धारक मानती रही हैं। इस व्यवस्था में 'शूद्र' और 'अवर्ण' समुदायों को शिक्षा, धार्मिक अनुष्ठान, संपत्ति और स्वतंत्रता से वंचित रखा गया। अंबेडकर स्वयं एक दलित परिवार से थे और उन्होंने अपने जीवन में उस अपमान. जनक अनुभव को निकटता से भोगा, जिसने उनके विचारों को सामाजिक न्याय की दिशा में केंद्रित किया। जाति व्यवस्था की ऐतिहासिक रूपरेखा का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि प्रारंभिक वैदिक काल में सामाजिक विभाजन कर्म आधारित था, किंतु समय के साथ यह जन्म आधारित प्रणाली में परिवर्तित हो गया। मनु स्मृति जैसे धर्मशास्त्रों ने इस व्यवस्था को धार्मिक वैधता प्रदान की, जिससे इसे समाज में स्थायित्व प्राप्त हुआ। मध्यकाल में जाति व्यवस्था और अधिक कठोर हुई, जिससे दलित समुदायों की स्थिति और भी विषम हो गई। अंग्रेजी शासन के दौरान भले ही कानून में समानता का सिद्धांत लागू किया गया, लेकिन सामाजिक व्यवहार में जातिगत भेदभाव विद्यमान रहा। अंबेडकर ने इस विरोधाभास को स्पष्ट करते हुए कहा कि 'राजनीतिक स्वतंत्रता तब तक अधूरी है जब तक सामाजिक स्वतंत्रता नहीं प्राप्त होती।'

अनुसूचित जातियों की सामाजिक स्थिति अतीत में केवल श्रम आधारित कार्यों तक सीमित रही, जैसे– चमड़ा उद्योग, शवदाह, सफाई कार्य आदि। इन कार्यों को 'अशुद्ध' समझा गया और इसी आधार पर इन जातियों को अस्पृश्य घोषित कर दिया गया। उन्हें मंदिरों में प्रवेश, सार्वजनिक जलस्रोतों के प्रयोग, शैक्षणिक संस्थानों में पढ़ाई और सामान्य नागरिक सुविधाओं से वंचित रखा गया। यह सामाजिक भेदभाव केवल आर्थिक शोषण नहीं था, बल्कि एक प्रकार का सांस्कृतिक बहिष्कार भी था। यही कारण था कि अंबेडकर ने इसे केवल सामाजिक सुधार का नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति का विषय माना। डॉ. अंबेडकर ने जाति उन्मूलन की दिशा में जो विचार रखे, वे केवल नकारात्मक आलोचना तक सीमित नहीं थे, बल्कि उन्होंने दलितों के उत्थान के लिए एक सकारात्मक कार्य योजना भी प्रस्तुत की। उन्होंने दलितों को शिक्षा के माध्यम से सशक्त बनाने, संगठित करने और राजनीतिक रूप से जागरूक करने का आह्वान किया। उनका यह स्पष्ट मत था कि जब तक दलित वर्गों को समाज में सम्मान. जनक स्थान नहीं मिलेगा, तब तक भारत का लोकतंत्र अधूरा रहेगा।

इस शोधपत्र का उद्देश्य अंबेडकर के विचारों के आलोक में जाति प्रथा की आलोचना और दलित समस्याओं के समाधान को समझना है। यह विषय इसलिए भी प्रासंगिक है क्योंकि आज भी दलित समुदाय को सामाजिक असमानता, भेदभाव और हिंसा का सामना करना पड़ता है। संविधान में वर्णित समानता के अधिकार और आरक्षण जैसे उपायों के बावजूद, सामाजिक व्यवहार में अब भी अनेक स्तरों पर जातीय श्रेष्ठता और दलितों की उपेक्षा दिखाई देती है। अंबेडकर के विचार आज भी न केवल दलित समाज, बल्कि पूरे भारत के लिए एक नैतिक दिशा और संवैधानिक दृष्टिकोण प्रदान करते हैं।

डॉ0 भीमराव अंबेडकर का जीवन और सामाजिक परिवेश

भारतीय इतिहास में डॉ. भीमराव अंबेडकर का स्थान एक ऐसे विचारक, समाज सुधारक, विधिवेत्ता और दलित चेतना के प्रवर्तक के रूप में स्थापित है, जिन्होंने सामाजिक असमानता के विरुद्ध एक संगठित वैचारिक आंदोलन का सूत्रपात किया। उनका जीवन स्वयं में सामाजिक संघर्ष और परिवर्तन की प्रेरणा का जीवंत उदाहरण है। जा. तिगत भेदभाव, धार्मिक कठोरता और आर्थिक विषमता की पृष्ठभूमि में जन्मे अंबेडकर ने न केवल इन परिस्थितियों का सामना किया, बल्कि एक ऐसे वैकल्पिक समाज की परिकल्पना की जिसमें समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के सिद्धांतों को स्थापित किया जा सके। डॉ. अंबेडकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 को मध्यप्रदेश के महू छावनी में महार जाति के एक सैनिक परिवार में हुआ था। उनके पिता रामजी मालोजी सकपाल ब्रिटिश सेना में सूबेदार थे और शिक्षित थे, जिनका प्रभाव बालक भीमराव पर गहराई से पड़ा। माता भीमाबाई ने धार्मिक और नैतिक शिक्षा प्रदान

की। यद्यपि उनके परिवार ने शिक्षा को महत्त्व दिया, फिर भी जातीय अस्पृश्यता का प्रभाव उनके जीवन में आरंभ से ही विद्यमान रहा। विद्यालय में उन्हें श्अस्पृश्यश मानकर पीने का पानी अलग दिया जाता था और बैठने के लिए चटाई नहीं दी जाती थी। यह अनुभव ही उनके सामाजिक दृष्टिकोण को प्रारंभिक रूप से आकार देने वाला बना।

शिक्षा के प्रति उनका आग्रह असाधारण था। प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात उन्होंने एलफिंस्टन कॉलेज से बी.ए. की डिग्री प्राप्त की और फिर आगे की पढ़ाई के लिए कोलंबिया विश्वविद्यालय (अमेरिका) गए। वहाँ से उन्होंने एम.ए. और पीएच.डी. की उपाधियाँ प्राप्त कीं। इसके पश्चात लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से डी.एससी. और बैरिस्टर की शिक्षा पूरी की। इतने उच्च स्तर पर अध्ययन करने वाले वे भारत के पहले दलित व्यक्ति थे। इन सभी अनुभवों ने उनके चिंतन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सामाजिक विश्लेषण और न्यायिक चेतना को समाहित किया। डॉ. अंबेडकर के विचारों का निर्माण न केवल उनकी शिक्षा से हुआ, बल्कि जीवन के अनुभवों ने उन्हें सामाजिक संरचनाओं को गहराई से समझने में सक्षम बनाया। अस्पृश्यता की वेदना को उन्होंने न केवल सहा, बल्कि उसकी नृशंसता को बौद्धिक रूप से चुनौती भी दी। सार्वजनिक जलस्रोतों पर प्रतिबंध, मंदिरों में प्रवेश वर्जित होना, और दलितों की दयनीय आर्थिक दशा जैसे अनुभव उनके चिंतन की आधारभूमि बने। कोलंबिया में पढ़ाई के दौरान वे जॉन डिवी के व्यावहारिक दर्शन और स्वतंत्रता की अवधारणा से अत्यधिक प्रभावित हुए, जिसने उनके लोकतांत्रिक और मानवतावादी दृष्टिकोण को सुदृढ़ किया।

दलित चेतना के प्रवर्तक के रूप में डॉ. अंबेडकर ने अस्पृश्यता के विरुद्ध एक संगठित आंदोलन चलाया। उन्होंने बहिष्कृत हितकारिणी सभा (1924) की स्थापना की और शिक्षा व सामाजिक सुधार को आंदोलन के केंद्र में रखा। 1930 में आयोजित 'कालाराम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह' ने देश को यह दिखा दिया कि दलित अब केवल सहने को तैयार नहीं, बल्कि अपने अधिकारों के लिए संगठित संघर्ष करेंगे। उन्होंने 'मूकनायक', 'जनता' और 'बहिष्कृत भारत' जैसे पत्रों के माध्यम से दलितों की आवाज को सशक्त बनाया। डॉ. अंबेडकर की सबसे बड़ी उपलब्धि भा. रतीय संविधान का निर्माण है, जिसमें उन्होंने समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय और आरक्षण जैसे प्रावधानों के माध्यम से एक समतामूलक समाज का स्वरूप प्रस्तुत किया। उन्होंने दलितों को केवल सहानुभूति का पात्र नहीं, बल्कि गरिमा, अधिकार और अवसर के साथ समाज में स्थापित करने का आग्रह किया।

अंबेडकर द्वारा जाति प्रथा की आलोचना

भारतीय समाज में जाति प्रथा न केवल सामाजिक संरचना का एक तत्व रही है, बल्कि यह सामाजिक असमानता, उत्पीड़न और वंचना का स्रोत भी बनी रही है। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने जाति प्रथा को केवल एक परंपरा या धार्मिक अनुशासन मानने से इन्कार करते हुए इसे सामाजिक शोषण की संस्था के रूप में चिह्नित किया। उन्होंने अपने लेखन और आंदोलनों के माध्यम से इस व्यवस्था की बुनियादी आलोचना प्रस्तुत की, जो भारतीय समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करती है। जाति व्यवस्था का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करते हुए अंबेडकर ने इसे एक ऐसी संरचना के रूप में व्याख्यायित किया, जिसमें सामाजिक श्रेणियाँ जन्म पर आधारित होती हैं, और प्रत्येक जाति को विशेष कार्य, अधिकार और प्रतिबंधों में बाँध दिया जाता है। अंबेडकर के अनुसार, यह व्यवस्था न तो न्यायसंगत है, न ही तार्किक, क्योंकि यह व्यक्ति की योग्यता, इच्छा या कर्म पर नहीं, बल्कि उसके जन्म पर आधारित होती है। उनका तर्क था कि ऐसी प्रणाली, जो सामाजिक गतिशीलता को रोकती है, अंततः मानव संसाधनों के विकास को बाधित करती है। उन्होंने इसे श्स्थायी सामाजिक असमानता की व्यवस्थाश बताया, जो न केवल निम्न जातियों को अपमानित करती है, बल्कि समाज की समग्र प्रगति में बाधक बनती है।

मनुस्मृति और हिंदू सामाजिक व्यवस्था की आलोचना में अंबेडकर अत्यंत स्पष्ट थे। उन्होंने मनुस्मृति को जा. तिगत भेदभाव का धार्मिक आधार बताया और इसे ब्राह्मणवादी प्रभुत्व को वैधता प्रदान करने वाला ग्रंथ माना। उनका यह मानना था कि इस ग्रंथ ने सामाजिक स्तरीकरण को ईश्वरीय आदेश के रूप में प्रस्तुत करके, जाति व्यवस्था को धर्म का अटूट अंग बना दिया। अंबेडकर ने मनुस्मृति को 'नैतिक अपवित्रता का दस्तावेज़' कहा और 25 दिसंबर 1927 को महाड़ में सार्वजनिक रूप से इसकी प्रतिलिपि का दहन कर सामाजिक विद्रोह का उद्घोष किया। यह घटना प्रतीकात्मक रूप से अंबेडकर के उस विश्वास को दर्शाती है कि जब तक धार्मिक ग्रंथों से जातिगत भेदभाव के तत्त्व समाप्त नहीं किए जाते, तब तक सामाजिक समता संभव नहीं।

अंबेडकर की प्रसिद्ध रचना 'जाति का उन्मूलन' उनके चिंतन का निचोड़ है, जिसमें उन्होंने जाति प्रथा की

बुनियादी समीक्षा प्रस्तुत की। इस पुस्तक में अंबेडकर ने न केवल जातिवाद की आलोचना की, बल्कि सुधारवादी हिंदू नेताओं पर भी प्रहार किया, जो जातिवाद को समाप्त करने के नाम पर केवल उसकी सतही आलोचना करते थे, परंतु उसकी जड़ों को नहीं छूते थे। उन्होंने इस ग्रंथ में यह स्पष्ट कहा कि षहिंदू समाज एक मिथ्या सामाजिक संस्था है, जिसका आधार जाति है और जाति का आधार असमानता है।ष उनके अनुसार जाति केवल सामाजिक बुराई नहीं, बल्कि एक ऐसी मानसिकता है जिसे जड़ से समाप्त करने के लिए गहन वैचारिक संघर्ष की आवश्यकता है। उन्होंने सुझाव दिया कि जाति का उन्मूलन केवल सामाजिक सुधारों से संभव नहीं है, बल्कि इसके लिए धर्म, संस्कृति और शिक्षा में गहरे परिवर्तन की आवश्यकता है। अंबेडकर ने यह भी कहा कि जो समाज मनुष्यता के आधार पर संगठित नहीं है, वह स्थायी रूप से न्यायसंगत नहीं हो सकता। इसीलिए उन्होंने समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व को सामाजिक संगठन का आधार बनाने का आग्रह किया।

दलित समस्याओं की पहचान और कारण

भारतीय समाज में जातिगत भेदभाव का सबसे भीषण स्वरूप जिस वर्ग ने सहा है, वह दलित समुदाय है। ऐतिहासिक रूप से 'अवर्ण' कहे गए ये लोग न केवल सामाजिक ढांचे के अंतिम पायदान पर रखे गए, बल्कि उनकी स्थिति धार्मिक, शैक्षणिक, आर्थिक, और राजनीतिक स्तर पर वंचित और बहिष्कृत की रही। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने दलित समुदाय की इन बहुआयामी समस्याओं की गहन पहचान की और उनके कारणों की सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पड़ताल की। सबसे पहले यदि सामाजिक बहिष्कार और अस्पृश्यता की बात करें, तो यह केवल सामाजिक दूरी नहीं, बल्कि मानसिक उत्पीड़न और सांस्कृतिक अपमान की निरंतर प्रक्रिया रही है। अस्पृश्यता के चलते दलितों को मंदिरों में प्रवेश, सार्वजनिक जलस्रोतों का उपयोग, विद्यालयों में समान व्यवहार, यहां तक कि सामान्य नागरिक सुविधाओं तक से वंचित रखा गया। अंबेडकर ने इसे ष्मानवता के विरुद्ध अपराधष कहा और इस प्रथा को हिंदू समाज की सबसे घातक कुरीति के रूप में निरूपित किया। यह बहिष्कार केवल सामाजिक नहीं, बल्कि आत्म–सम्मान के हनन की स्थिति पैदा करता रहा, जिससे दलितों में हीनता, भय और निष्क्रियता की भावना गहरी होती चली गई। इसके साथ ही शिक्षा, आर्थिक संसाधनों और राजनीतिक भागीदारी की कमी भी दलित समुदाय की दयनीय स्थिति का मूल कारण रही है। शिक्षा, जो आत्मनिर्भरता और सामाजिक जागरूकता का माध्यम होती है, उससे दलितों को लंबे समय तक दूर रखा गया। विशेषतः प्राचीन और मध्यकालीन भारत में वेदों, शास्त्रों और उच्च शिक्षा से उन्हें निष्कासित रखा गया। आर्थिक दृष्टि से वे पारंपरिक रूप से केवल सेवा आधारित व्यवसायों तक सीमित कर दिए गए, जैसे दृ सफाई कार्य, चमड़ा उद्योग, मृत पशुओं का निपटान आदि। भूमि, पूंजी और अन्य संसाधनों से दूर रहने के कारण उनकी आर्थिक उन्नति अवरुद्ध रही। इसके परिणामस्वरूप, न तो वे शिक्षा प्राप्त कर पाए, और न ही राजनीतिक प्रतिनिधित्व में अपना स्थान बना सके।

राजनीतिक रूप से भी उनका वंचन स्पष्ट था। लंबे समय तक पंचायतों, नगरपालिकाओं, विधानसभाओं और संसदों में उनकी भागीदारी नगण्य रही। डॉ. अंबेडकर ने इस स्थिति को ठीक करने के लिए 'राजनीतिक आरक्षण' की अवधारणा प्रस्तुत की, ताकि दलितों को नीतिगत निर्णयों में आवाज़ और अधिकार मिल सके। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि जब तक दलितों को केवल वोट देने की स्वतंत्रता होगी, परंतु वे स्वयं सत्ता में भागीदारी नहीं करेंगे, तब तक लोकतंत्र केवल एक दिखावा होगा। धार्मिक असमानता और सांस्कृतिक वंचना भी दलित समस्याओं की जड़ में रही है। हिंदू धर्म की वर्ण–व्यवस्था ने दलितों को धर्म के भीतर ही एक पराया स्थान दे दिया। उन्हें मंदिरों में पूजा का अधिकार नहीं था, यज्ञों में भागीदारी वर्जित थी, और ब्राह्मण ग्रंथों में उन्हें 'अशुद्ध' तक कहा गया। इस धार्मिक बहिष्कार ने उन्हें न केवल आध्यात्मिक विमुखता दी, बल्कि उन्हें सांस्कृतिक रूप से भी हाशिए पर खड़ा कर दिया। उनके त्योहार, रीति–रिवाज, भाषा, और परंपराएँ कभी मुख्यधारा में स्वीकार नहीं की गईं। यही कारण था कि अंबेडकर ने अंततः 1956 में बौद्ध धर्म को अपनाकर न केवल धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त की, बल्कि दलितों को एक वैकल्पिक सांस्कृतिक पहचान भी दी।

डॉ. अंबेडकर ने इन सभी समस्याओं की पहचान न केवल अनुभव के स्तर पर की, बल्कि उन्हें वैचारिक धरातल पर समाजशास्त्रीय और ऐतिहासिक विश्लेषण के माध्यम से प्रस्तुत भी किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि दलितों की समस्या केवल गरीबी या अज्ञानता नहीं, बल्कि एक सदी पुरानी संरचनात्मक असमानता का परिणाम है। उन्होंने इस व्यवस्था को जड़ से बदलने के लिए शिक्षा, संगठन और संघर्ष के मंत्र दिए, ताकि दलित समुदाय न केवल

अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो, बल्कि उन्हें प्राप्त भी कर सके। इस प्रकार, डॉ. अंबेडकर की दृष्टि में दलित समस्याएं किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं थीं, बल्कि वे बहुस्तरीय और बहुपरतीय थीं। उनके समाधान भी उसी प्रकार समग्र होने चाहिए सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक सभी मोर्चों पर। आज जब भारत लोकतंत्र, समानता और अधिकारों की बात करता है, तब अंबेडकर की यह दृष्टि और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती है।

अंबेडकर द्वारा सुझाए गए समाधान

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने जाति प्रथा और दलित उत्पीड़न को केवल आलोचना तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उनके उन्मूलन के लिए ठोस और बहुआयामी समाधान भी प्रस्तुत किए। उनका उद्देश्य एक ऐसा समाज निर्मित करना था, जो समानता, स्वतंत्रता और न्याय के सिद्धांतों पर आधारित हो। इसके लिए उन्होंने संवैधानिक, शैक्षणिाक, राजनीतिक और धार्मिक स्तरों पर क्रांतिकारी प्रस्ताव रखे, जिनकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। दसबसे पहले यदि संवैधानिक उपायों की बात करें, तो अंबेडकर ने भारतीय संविधान को सामाजिक क्रांति का साधन बनाया। उन्होंने संविधान में समानता, स्वतंत्रता, धर्म–निरपेक्षता और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को केंद्र में रखा। अनुसूचित जातियों और जनजातियों को उनके ऐतिहासिक शोषण से उबारने के लिए उन्होंने आरक्षण की व्यवस्था को आवश्यक माना, जो शिक्षा, नौकरियों और राजनीति में उनके प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करती है। यह व्यवस्था किसी विशेषाधिकार की नहीं, बल्कि ऐतिहासिक अन्याय की प्रतिपूर्ति की योजना थी। उन्होंने यह भी सुनिश्चित किया कि संविधान का अनुच्छेद 15(2) अस्पृश्यता और भेदभाव को समाप्त करने का प्रावधान करे, जिससे दलितों को समान सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हो सके। डॉ. अंबेडकर ने शिक्षा को सबसे बड़ा हथियार माना, जिससे दलित समाज अपने अधिकारों के प्रति जागरूक और सक्षम बन सकता है। उनका प्रसिद्ध नारा "शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो" इस विचार का परिचायक है। उन्होंने यह अनुभव किया कि जब तक दलित समुदाय ज्ञान से वंचित रहेगा, तब तक वह शोषण से मुक्त नहीं हो सकेगा। अंबेडकर स्वयं शिक्षा के माध्यम से समाज में सम्मान. जनक स्थान तक पहुँचे और उन्होंने यही रास्ता अपने समुदाय को भी सुझाया। इसके साथ ही उन्होंने राजनीतिक प्रतिनिधित्व को भी अत्यंत आवश्यक माना। उनके अनुसार, यदि दलितों को सत्ता और निर्णय–निर्माण की प्रक्रिया में भागीदारी नहीं मिलेगी, तो उनके साथ होने वाला भेदभाव समाप्त नहीं होगा। इसी दृष्टिकोण से उन्होंने दलितों को पृथक निर्वाचिका के अधिकार की मांग की थी, यद्यपि बाद में पूना समझौते के तहत उन्होंने सांझा निर्वाचन प्रणाली को स्वीकार किया।

धर्मांतरण उनके समाधान का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पहलू था। डॉ. अंबेडकर ने हिंदू धर्म की वर्ण व्यवस्था को असमानता और अस्पृश्यता का मूल बताया। उन्होंने इसे सुधारने के अनेक प्रयास किए, किंतु जब उन्हें यह स्पष्ट हो गया कि धर्म के भीतर रहते हुए दलितों को समानता नहीं मिल सकती, तब उन्होंने धर्म परिवर्तन का मार्ग चुना। 14 अक्टूबर 1956 को उन्होंने लाखों अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म स्वीकार किया। उनके अनुसार, बौद्ध धर्म समानता, करुणा और मानवता का धर्म है, जिसमें कोई जातिगत भेदभाव नहीं है। यह धर्मांतरण केवल धार्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक मुक्ति और आत्मसम्मान की पुनर्प्राप्ति का प्रतीक था। डॉ. अंबेडकर द्वारा सुझाए गए यह समाधान केवल तात्कालिक सुधारों तक सीमित नहीं थे, बल्कि उन्होंने भारतीय समाज को एक नई दिशा प्रदान की। उनका दृष्टिकोण समग्र थाकृवह जानते थे कि केवल कानूनी परिवर्तन पर्याप्त नहीं होंगे, जब तक सामाजिक मानसिकता और संरचनाएँ न बदलें। इसलिए उन्होंने विचार, संगठन और व्यवहारकृतीनों में बदलाव की आवश्यकता पर बल दिया। उनकी वैचारिक दृढ़ता और व्यावहारिक समाधान आज भी दलितों के सशक्तिकरण की आधारशिला बने हुए हैं।

अंबेडकर के विचारों का समकालीन प्रासंगिकता

डॉ. भीमराव अंबेडकर के विचार केवल उनके समय की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं तक सीमित नहीं थे, बल्कि उन्होंने एक ऐसे विचारधारात्मक ढाँचे की नींव रखी, जिसकी समकालीन प्रासंगिकता आज भी उतनी ही गंभीर और प्रभावशाली है। अंबेडकर का चिंतन जातिगत उत्पीड़न और सामाजिक बहिष्कार की पीड़ा से जन्मा अवश्य, परंतु उसका विस्तार समतामूलक, लोकतांत्रिक और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना की दिशा में था। आज, जब भारत एक आधुनिक राष्ट्र के रूप में विकास कर रहा है, तब यह अनिवार्य हो जाता है कि हम अंबेडकर के विचारों को वर्तमान संदर्भ में समझें और उनका मूल्यांकन करें। वर्तमान समय में दलित समुदाय ने कई

क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की है। शिक्षा के क्षेत्र में आरक्षण और विशेष योजनाओं के कारण अब दलित विद्यार्थी उच्च शिक्षण संस्थानों तक पहुँच बना पा रहे हैं। प्रशासनिक सेवाओं में उनकी उपस्थिति पहले की तुलना में बढ़ी है और कई दलित नेता राष्ट्रीय राजनीति में भी स्थापित हुए हैं। परंतु इन उपलब्धियों के बावजूद चुनौतियाँ समाप्त नहीं हुई हैं। आज भी जाति आधारित भेदभाव, सामाजिक बहिष्कार, दलित महिलाओं पर अत्याचार और आर्थिक विषमता जैसी समस्याएँ समाज के अनेक हिस्सों में प्रचलित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि पर अधिकार, मंदिर प्रवेश, स्कूलों में भेदभावपूर्ण व्यवहार और ऊँची जातियों की हिंसा जैसे मुद्दे, डॉ. अंबेडकर की चिंता को यथार्थ सिद्ध करते हैं। सामाजिक आंदोलन और राजनीतिक चेतना के क्षेत्र में अंबेडकरवादी सोच ने दलित समुदाय को आत्म–सम्मान और संगठित संघर्ष का मार्ग दिखाया है। 1970 के दशक के बाद दलित पैंथर्स जैसे आंदोलनों से लेकर वर्तमान समय में भीम आर्मी, बहुजन क्रांति मोर्चा, और अन्य संगठनों ने दलित अधिकारों को लेकर जनचेतना पैदा की है। इन आंदोलनों ने संविधान की रक्षा, सामाजिक समता और शिक्षा के अधिकार को लेकर व्यापक जनसंपर्क किया है। इसके साथ ही दलित साहित्य और विमर्श ने भी अंबेडकर की विचारधारा को सांस्कृतिक और बौद्धिक धरातल पर सशक्त किया है। दलित लेखकों ने अपने अनुभवों और अस्मिता के प्रश्नों को साहित्य के माध्यम से व्यक्त कर मुख्यधारा को चुनौती दी है।

आज के भारत में अंबेडकरवाद की प्रासंगिकता केवल दलित समुदाय तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समग्र भारतीय समाज के लिए एक वैकल्पिक और मानवीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। अंबेडकरवाद वह विचारधारा है, जो केवल जातिविरोधी नहीं, बल्कि पूंजीवाद, पितृसत्ता, धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक असमानताओं के विरुद्ध भी खड़ी होती है। यह विचारधारा लोकतंत्र को केवल एक चुनावी प्रक्रिया नहीं मानती, बल्कि सामाजिक–आर्थिक न्याय के साथ गहराई से जोड़ती है। अंबेडकर ने जिस 'समाज–प्रवर्तन' की बात की थी, वह आज भी अधूरा है। जातिगत आरक्षण को लेकर होने वाली बहसें, सामाजिक न्याय पर राजनीतिक हमले, और संविधान में संशोधन की कोशिशेंकृयह सब अंबेडकर की चेतना को और अधिक प्रासंगिक बनाते हैं। डॉ. अंबेडकर ने यह स्पष्ट कहा था कि "हमारे लिए राजनीतिक स्वतंत्रता का अर्थ तब तक अधूरा रहेगा, जब तक हमें सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती।" वर्तमान भारत में जहाँ एक ओर तकनीकी प्रगति हो रही है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक विषमता भी बनी हुई है। इस विषमता को दूर करने के लिए अंबेडकर की विचारधारा को केवल स्मरण नहीं, बल्कि व्यवहार में लाना होगा। अतः यह निष्कर्ष निकालना उचित है कि डॉ. अंबेडकर के विचार केवल ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय के जीवंत और आधुनिक उपकरण हैं। जब तक भारतीय समाज में असमानता, भेदभाव और वंचना के तत्व विद्यमान हैं, तब तक अंबेडकरवाद की प्रासंगिकता न केवल बनी रहेगी, बल्कि और अधिक सशक्त होती जाएगी।

निष्कर्ष

डॉ. भीमराव अंबेडकर का चिंतन भारतीय समाज की उस जटिल संरचना को चुनौती देने का प्रयास था, जिसमें जाति प्रथा गहराई से समाई हुई थी। उन्होंने न केवल इसकी सैद्धांतिक आलोचना की, बल्कि व्यावहारिक समाधान भी प्रस्तुत किए। उनका दृष्टिकोण समग्र थाकृजिसमें सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक और धार्मिक क्षेत्रों में परिवर्तन की आवश्यकता को रेखांकित किया गया। वर्तमान समय में जब हम अंबेडकर के विचारों का मूल्यांकन करते हैं, तब यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने भारतीय समाज को जो वैचारिक दृष्टि दी, वह आज भी उतनी ही सार्थक और आवश्यक है। अंबेडकर के विचारों की सार्थकता इस बात में निहित है कि उन्होंने दलितों को केवल एक संवैधानिक पहचान ही नहीं दी, बल्कि उन्हें एक आत्मसम्मानपूर्ण जीवन का दर्शन भी प्रदान किया। उन्होंने जिस प्रकार अस्पृश्यता, सामाजिक बहिष्कार और धार्मिक भेदभाव के विरुद्ध आवाज़ उठाई, उसने वंचित वर्गों को आत्मबोध की शक्ति दी। उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता केवल एक समुदाय तक सीमित नहीं थी, बल्कि उन्होंन संपूर्ण भारतीय समाज को न्याय आधारित बनाने की बात की। आज संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित 'सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय' के मूल सिद्धांत अंबेडकर की वैचारिक विरासत के प्रमाण हैं। उन्होंने लोकतंत्र को केवल शासन की पद्धति नहीं, बल्कि जीवन जीने की समतामूलक प्रणाली के रूप में देखा। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि डॉ. अंबेडकर के विचार जाति प्रथा के उन्मूलन और दलित समस्याओं के समाधान की दिशा में एक मजबूत वैचारिक नींव प्रदान करते हैं। उन्होंने भारत को केवल एक संविधान नहीं, बल्कि एक सामा.

जिक दृष्टि दीकृजो हर प्रकार की असमानता के विरुद्ध खड़ी होती है। आज जब हम एक आधुनिक, समतामूलक और न्यायपूर्ण भारत की कल्पना करते हैं, तब अंबेडकर की विचारधारा हमें उस मार्ग की ओर ले जाने का सशक्त माध्यम बनती है। यह शोध इस बात का प्रमाण है कि अंबेडकर का चिंतन एक सतत संवाद है, जिसे समय के साथ पुनर्पाठ और पुनरावलोकन की आवश्यकता है।

Author's Declaration:

The views and contents expressed in this research article are solely those of the author(s). The publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible for any errors, ethical misconduct, copyright infringement, defamation, or any legal consequences arising from the content. All legal and moral responsibilities lie solely with the author(s).

संदर्भ सूची

1. सागर एस.एल., ''डॉ. अम्बेडकर संक्षिप्त जीवन परिचय'', सागर प्रकाशन, 2000.
2. मेहत चेतन, ''समता के समर्थन अम्बेडकर'' मलिक एण्ड कम्पनी, जालन्धर, 1991.
3. मेघवाल कुसुम, ''भारतीय नारी के उद्धारक डॉ. भीमराव अम्बेडकर सम्पर्क प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005.
4. सर्वेश, ''अम्बेडकर के विचार,'' समता साहित्य सदन, नई दिल्ली, 2007
5. शास्त्री सोहन लाल, ''बाबा साहब से समपर्क में 25 वर्ष, ''भारतीय बौद्ध महासभा, दिल्ली प्रदेश बुद्ध बिहार अम्बेडकर भवन नई दिल्ली, 1998.
6. त्रिपाठी सूर्य नारायण, ''भारत रत्न बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर,'' साधना पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2014.
7. नेमा, जी.पी., ''भारतीय राजनीतिक विचार,''यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2009.
8. पुजारी विजय कुमार, ''डॉ. अम्बेडकर जीवन और दर्शन'', सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008.
9. विद्रोही एम.आर.,''दलित दस्तावेज'' सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली 2009.
10. मीर धनंजय, ''डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर जीवन चरित्र,'' पापुलर प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, 1996.
11. सहारे, एम. एल., डा. भीमराव अम्बेडकर जीवन और कार्य, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण, नई दिल्ली, 1993.
12. डॉ. डीआर जाटव डॉक्टर अंबेडकर व्यक्तित्व और कृतित्व क्षमता प्रकाशन जयपुर 1988.
13. डॉ. रामगोपाल सिंह डॉक्टर अंबेडकर के सामाजिक विचार मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल 1991.
14. विवेकानंद तिवारी, अछूत मतवाद के सच गाँधी और अंबेडकर, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली 2019.
15. त्रिपाठी सूर्यनारायण, भारत रत्न बाबा साहब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर, साधना पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004.
16. मून बसन्त (2001), समता के समर्थक डॉ0 अम्बेडकर, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली पृ0 77

Cite this Article-

'डॉ0 संदीप कुमार', 'अम्बेडकर के विचारों में जाति प्रथा और दलित समस्याओं का समाधान', Shodhpith International Multidisciplinary Research Journal, ISSN: 3049-3331 (Online), Volume:1, Issue:03, May-June 2025.

Journal URL- https://www.shodhpith.com/index.html

Published Date- 15 June 2025

DOI-10.64127/Shodhpith. 2025v1i3002